पूज्यपाद श्री शिवलौती महाराज का संक्षिप्त परिचय

आज से लगभग साठ साल पहले हिमाचल प्रदेश की राजधानी शिमला से करीब डेढ सौ किलोमीटर दूरस्थ प्रान्त के एक पिछड़े तहसील चौपाल की सीमा में आने वाले गाँव-हीराह(पोस्ट-टिकरी, परगना-नेवल) के खानदानी राजपूत श्री दिलमी रामजी के सुपुत्र श्री अनन्त रामजी के सबसे छोटी सन्तान के रूप में महाराजजी ने राजयोग में जन्म लिया। अपने पिता की सन्तानों में सबसे बड़ी बहन थी उससे दो साल छोटे एक भाई थे तथा उस भाई से 13 साल छोटे महाराजजी थे जिनका नाम गोपी चन्द रखा गया। इनके दादा एवं पिताजी को जुब्बल के राजा से नम्बरदारी प्राप्त थी। पिता के पास सैकडों बीघे जमीन थी तथा वे काफी सम्पन्न थे। इनका गाँव समुद्रतट से लगभग 2500 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। महाराजजी का बचपन इसी गाँव में प्रकृति के सांनिध्य में गुजरा।

पिछड़े पहाड़ी क्षेत्र में पैदा होने के कारण इन्हें काफी परिश्रम के बाद भी नौवीं कक्षातक की शिक्षा से ही संतोष करना पडा। इसके पश्चात् पिताजी के ठेकेदारी के काम में हाथ बँटाना शुरू कर दिया और कुछ ही दिनों में एक सफल ठेकेदार बन गये। ठेकेदारी का काम करते-करते समय गुजरता गया और लगभग 35 साल की आयु में अपनी इच्छा न होते हुए भी पिताजी की अन्तिम इच्छा के सम्मान हेतु शादी की। वे 6 वर्षतक गृहस्थी का बोझ उठाते रहे। इस बीच इन्हें दो पुत्र पैदा हुए जिनमें से पहला जीवित न रहा।

शिक्षा की तरह उचित स्वास्थ्य-सेवाओं के अभाव में 41-42 साल की उम्र में इन्हें होनेवाली बिमारी का सही इलाज यथासमय न होने से उन्हें एक पैर से विकलांग होना पडा।

महाराजजी को बचपन से ही मूर्ति बनाने, उसकी पूजा करने तथा दूसरों द्वारा उसकी पूजा करवाने का शौक था। प्रबल आध्यात्मिक रुचि के कारण शुरू से ही उन्हें संतों एवं सिद्धि सम्पन्न लोगों की सतत तलाश थी। अध्यात्म एवं रहस्यमयी सिद्धियों के प्रति इतना आर्कषण था कि उनकी प्राप्ति के लिये वे हर तरह का उद्योग कर सकते थे। उनमें प्रबल इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति एवं मेधा-शक्ति का निवास था। दुनियाँ में इन तीनों गुणों का एक साथ पाया जाना दुर्लभ है। आध्यात्मिक रुचि को पूरा करने के साथ-साथ वे ठेकेदारी का भी काम करते थे। लगभग 20 साल की उम्र में ठेकेदारी शुरू की थी तथा वह लगभग दस सालतक चलती रही।

इसी ठेकेदारी के दौरान उन्हें एक सिद्धि सम्पन्न व्यक्ति श्री आर. डी. ममगाई, जो गढ़वाल के श्रीनगर जनपद के रहनेवाले थे, से मुलाकात हुई। वे उच्च शिक्षा प्राप्त तथा माता के परम पुजारी थे। उनके अन्दर अतीत, अनागत एवं वर्तमान-तीनों कालों की बातें जानने के साथ-साथ दूसरों के मनोभावों को भी जानने की शक्ति थी। उन्होंने महाराजजी के अंगभंग एवं शिव-भक्ति की प्राप्ति की भविष्यवाणी बहुत पहले ही कर दी थी।

श्री आर. डी. ममगाई की मृत्यु के बाद शिमला में तपोलीन गिरीनामा चमत्कारी नागा संन्यासी श्री संतोष गिरी, जो पूर्व आश्रम में ग्वालियर-महाराजा के परिवार से संबंधित थे, जो जूना अखाड़े के सेक्रेट्री भी रह चुके थे तथा जो बारह सालतक खड़े रहकर तप भी कर चुके थे, को अपना दूसरा गुरु बना कर उनसे दीक्षा ली थी। वहाँ कई सालोंतक उनकी सेवा की तथा उनसे तपस्या एवं एकाहार का गुण हासिल किया। अपने पहले गुरु से उन्होंने पूजा एवं उपासना की विधियों का ज्ञान प्राप्त किया था।

श्री संतोष गिरी के समाधिस्थ होने के बाद उन्होंने फौज से सेवानिवृत्त दक्षिण भारतीय सिद्धि सम्पन्न

महात्मा श्री रत्ना स्वामी. जो उन दिनों नाहरी(जो हिमाचल प्रदेश के कसौली करूबे के निकट है) में रहते थे, की शरण ली, क्योंकि अभीतक उन्हें अपने अभीष्ट की प्राप्ति नहीं हुई थी, और उनकी सेवा में लग गये।

कुछ दिनों बाद इनकी माता एवं पत्नी का देहान्त हो गया और वे घर-द्वार छोड़कर अपने एकमात्र पुत्र, जो लगभग ढाई साल का था, को साथ लेकर अपने तीसरे गुरु की सेवा में तन-मन से लीन हो गये। लगभग 12-13 सालतक मंदिर एवं आश्रम में झाड़ू-पोछा, सफाई, लंगर बनाने एवं बर्तन धोने आदि छोटे से छोटे कार्यों को बड़ी श्रद्धा-भक्ति से करते रहे। एक पैर एवं विकृत शरीर से न केवल लगातार कठोर शारीरिकरूप से सेवा करते रहे अपितु रात को बहुत कम सोकर अथवा कभी-कभी बिना सोये ही मंदिर में बैठकर जप, ध्यान, पूजा, स्वाध्याय न जाने क्या-क्या करते रहे। प्रतिदिन वे बिना किसी अपवाद के रात्रि के न केवल तीसरे प्रहर के समाप्त होने से पहले अपितु सभी आश्रम वासियों से पहले ही भगवान् शिव को जल अर्पण कर देते थे। उनकी कठोर सेवा एवं भक्ति का उदाहरण उनके गुरुजी अन्य शिष्यों को देते रहते थे। महाराज के सन्दर्भ में वे कभी-कभी अपने शिष्यों से कहते कि "वह तो पिछले जन्म से ही दीक्षित है; इस जन्म में उसे दीक्षित करना या न करना कोई अर्थ नहीं रखता। तुम सब लोग भक्ति एवं सेवा से भाग जाओगे परन्तु वह अपनी सेवा एवं भक्ति में डटा रहेगा।" उनका अभिप्राय यह था महाराजजी की भक्ति पिछले जन्मों से चली आ रही है और वह उत्तरोत्तर अपने मंजिल की और बढ़ती जायगी। जबकि अन्य भक्तों के भक्ति की शुरुआत इसी जन्म से है अतः वह कभी भी थोड़े से झटके में समाप्त हो जायगी।

सेवा करते-करते आखिर एक दिन कुल देवता, गुरु एवं भगवान् शिव की कृपा अवतरित हुई और उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गयी। प्रारंभ में जब महाराजजी ने घर छोड़ा था तो उस समय उन्हें भगवान् शिव एवं पार्वती का दर्शन एवं आशीर्वाद प्राप्त हुआ। उनका वह आशिर्वाद पूर्णरूप से फलीभूत होने में लगभग 12 वर्ष बीत गये। तबतक उनके गुरु ने उन्हें संन्यास धर्म में दीक्षित कर दिया था।

महाराजजी की सिद्धि प्राप्ति के कुछ दिन बाद ही उनके गुरुजी ने नाहरी से करीब 30 कि. मी. नीचे उतरकर सुरजपुर में मंदिर बनाकर अपने शिष्यों के साथ रहने लगे। कुछ दिन बीतने के बाद उन्होंने महाराजजी को पिञ्जौर के निकट कौसल्या नदी के किनारे एकान्त श्मशान के समीप शिवलौती नामक स्थान पर रहने के लिये अकेले ही भेज दिया। वहाँपर उन्होंने स्वयं की अपनी तपस्या एवं सिद्धि के बलपर लगातार भंडारा या लंगर चलाते रहे, लोगों की समस्याओं का समाधान करते रहे तथा मंदिर एवं आश्रम के निर्माण का प्रयास करते रहे। बिना अपने गुरु के आर्थिक सहयोग के ही भंडारा या लंगर आदि की व्यवस्था करते रहे। धीरे-धीरे लोगों में उनका प्रचार बढ़ने लगा। उनकी सिद्धियों से अधिकाधिक लोगों का भला होने लगा और लोगों की भीड़ शिवलौती में इकट्ठी होती गयी। वहाँपर महाराजजी की साधना एवं सिद्धि दोनों ही अपनी चरम सीमा पर थीं। घंटों एक पैर पर खड़े होकर उपासना एवं भक्ति करते रहते। रविवार के दिन वहाँ हजारों की भीड इकट्ठी होती। धीरे- ध ीरे दो-तीन सालों में ही उस विरान जगह की काया पलट गयी। वहाँ एक विशाल शिव-मंदिर तथा कई कमरों का निर्माण हो गया। महाशिवरात्रि एवं श्रावणी(रक्षा-बन्धन) पूजा के दौरान हजारों भक्तों का समागम तथा विशाल भण्डारा होता। बड़े-बड़े अधिकारी, गरीब, अमीर, व्यापारी, किसान, विद्यार्थी तथा उद्योगपति-अनेकों प्रकार के लोग अपनी-अपनी समस्याओं के समाधान के लिये उनके पास आते रहे। सभी आनेवालों को वे अन्य बातों के साथ-साथ उपासना या भक्ति का(मुख्यतः शिवजी की) उपदेश करते थे। सभी आनेवालों को

मद्य-मांस आदि छोड़ने की प्रेरणा देते। फलस्वरूप अनेक लोगों ने उनसे प्रेरित होकर मद्य-मांस आदि को त्याग दिया। वहाँ पर महाराजजी को लोग 'शिवलौती महाराज' के नाम से पुकारने लगे।

शिवलौती में समय यों ही गुजरता जा रहा था। प्रतिदिन आनेवाले श्रद्धालुओं की भीड़ बढ़ती जा रही थी। अचानक 7/8/1988 के दिन भयंकर बाढ़ के कारण नदी के किनारे स्थित मंदिर एवं आश्रम में पानी भरने की आशंका बढ़ गयी थी। वहाँ ठहरे हुए लोगों को वापस चले जाने के लिये आदेश दे दिये गये थे। फिर भी कुछ चुने हुए भक्त महाराज को छोड़कर जाने के लिये तैयार नहीं हुए। 7/8/1988 को ही रात्रि में महाराज को तुरन्त स्थान छोड़कर चले जाने का दैवीय आदेश प्राप्त हुआ। फलस्वरूप महाराजजी ने रात में बचे हुए शिष्यों को वहाँ से चले जाने का आदेश दे दिया। उन्होंने स्वयं अपने द्वारा स्थापित शिव को छोड़कर वहाँ से जाना उचित नहीं समझा। यह उनके भक्ति की पराकाष्ठा ही कही जायगी कि उन्होंने दैवीय आदेश को भी नहीं माना और हठपूर्वक अपनी भक्ति की परीक्षा मानकर डटे रहे। अन्त में दैवीय विधान के अनुरूप 8/8/1988 को प्रातः 6 बजे के लगभग नदी की बाढ ने मंदिर सहित सभी आश्रम को अपने प्रवाह में ले लिया। आश्रम में टिके बाहर से आये तीन भक्तों की मृत्यु हो गयी। महाराज की चेतावनी के कारण कुछ अंतरंग भक्त चौकन्ने थे और वे बच निकले। महाराज को भी बाढ ने अपने प्रवाह में घसीट लिया और वे बह चले। परन्तु शायद भगवान् शिव उनकी भक्ति से द्रवित हो उन्हें बचाने के लिये ही उनकी जटा का कुछ अंश जल के ऊपर भक्तों के दृष्टिपथ में ले आये। जटा के संकेत से जल-प्रवाह में बहते हुये महाराज का पता पाकर शिष्यों ने जटा पकड़ कर अपने को बचाते हुए उन्हें भी बचा लिया। एक पैरवाले वैशाखी के सहारे से चलनेवाले महाराज जो सब तरफ से लाचार थे उनका नदी के भीषण जल-प्रवाह से बचना बिना भगवद्कृपा के संभव नहीं था।

तदनन्तर महाराजजी अपने गुरुजी के सूरजपुर स्थित आश्रम पर गये और कुछ दिन वहाँ रहे। हिमाचल प्रदेश में परवाणु के समीप अम्बोटा गाँव में स्थित कम से कम 200 साल प्राचीन शिवमंदिर काफी दिनों से उपेक्षित पड़ा था। उसकी देख-भाल करनेवाला कोई न था। गाँववालों ने महाराज के गुरुजी से उस मंदिर की व्यवस्था संभालने की पेशकश की। फलस्वरूप उन्होंने महाराजजी को ही उसकी व्यवस्था का कार्य सौंप दिया। महाराजजी के वहाँ पहुँचनेपर पुनः धीरे-धीरे भीड़ बढ़ने लगी और हजारों लोग उनके प्रशंसक बन गये। वहाँपर पुराने मंदिर की मरम्मत के अलावा एक नये विशाल शिवमंदिर का निर्माण हुआ। आश्रम के लिये कई कमरों का भी निर्माण हुआ। 4-6 सालों में ही वहाँ काफी प्रगति हो गयी। वहाँपर भी छोटे-बड़े हर तरह के लोगों का आना-जाना शुरू हो गया और आश्रम का भी विस्तार होता चला गया। कौसल्या नदी दो पहाड़ियों के बीच से होकर बहती है। शिवलौती का मंदिर, जिसे नदी ने 1988 में बहा दिया था, नदी के किनारे पहाड़ी की जड़ में बना था। उसी स्थान की सीध में पहाड़ी के ऊपर थोड़ा पीछे की ओर हट कर पुराने मंदिर की यादगार में तथा उस स्थान की आध्यात्मिक महत्ता के कारण एक नये विशाल शिवमंदिर का भी निर्माण महाराजजी द्वारा कराया गया।

इसी बीच उनके अन्तिम गुरुजी का स्वर्गवास हो गया। स्वर्गवास से थोड़ा पहले उन्होंने नाहरीवाले मंदिर की भी व्यवस्था का भार महाराजजी को सौंप दिया। नाहरीवाले मंदिर की जर्जर अवस्था का काया-पलट करने के साथ-साथ उसका विस्तार भी महाराज ने करवाया। विगत पाँच सालों से वे जाबली के नजदीक गैल गाँव से लगभग 700-800 फीट ऊपर एकान्त पहाड़ी पर आश्रम एवं मंदिर के निर्माण का कार्य करा रहे हैं। इस वीरान एवं कठिन चढ़ाईवाले स्थान पर भी श्रद्धालुओं की भीड़ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। मंदिरनिर्माण का

कार्य पूरा ही होनेवाला है। अम्बोटा मंदिर गाँव के नजदीक एवं सड़क के किनारे होने की वजह से श्रद्धालुओं के साथ-साथ पिकनिक मनानेवालों, अश्रद्धालुओं एवं असामाजिक तत्त्वों की भीड़ बढ़ने के कारण ही महाराजजी ने दुर्गम एवं निर्जन गैल एवं सरी गाँवों के मध्य की जगह में मंदिर एवं आश्रम बनाना पसन्द किया। इस स्थलपर पहुँचने के लिये आम लोगों को 45 से 60 मिनट की कठिन चढाई चढना होता है। इसलिये यहाँ केवल श्रद्धालु व्यक्ति ही आने का साहस कर सकता है। इस स्थान से महाराज के कुल देवता 'श्रीगुल महाराज' की प्रसिद्ध तपोभूमी चुड़धार पर्वत की चोटी ठीक सामने दीखती है।

पिछले कई सालों से महाराजजी के जन्मभूमि-क्षेत्र (तहसील चौपाल) से काफी भक्तों के आने से उनपर अनुग्रह के प्रतीक स्वरूप चौपाल तहसील के नेरवा नामक एक छोटे से कस्बे में महाराजजी ने एक भव्य मन्दिर एवं आश्रम बनाने का संकल्प किया। फलस्वरूप विगत कुछ वर्षों से वहाँ भी मन्दिर के निर्माण का कार्य तेजी से चल रहा है। जिसे शीघ्र ही पूरा हो जाने की उम्मीद है।

गीता आदि महान् ग्रन्थों की भाँति महाराजजी भी कर्मयोग को ज्यादा महत्त्व देते हैं। उनका कहना है कि कर्म से ही ज्ञान एवं भक्ति प्राप्त होती है जिससे व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। वे कहते हैं कि उन्हें मुख्य रूप से कर्म-योग द्वारा ही सिद्धि प्राप्त हुई है। उनकी दुष्टि में कर्मयोग का अर्थ पूर्ण निष्ठा, लगन एवं शक्ति के साथ बिना किसी शिकायत के गुरु के आदेशानुसार भगवान् एवं गुरु की सेवा तन, मन या धन-जिसके पास जिस तरह की सामर्थ्य है, से करना। मंदिर में झाड़ू, भंडारा, गऊ-सेवा, सफाई आदि जितने भी छोटे-बड़े कार्य किये जाते हैं उन सबका महत्त्व जप-पूजा-ध्यान से कम नहीं है। उनके अनुसार रोजाना स्नानकर शिवलिंग पर जल-फूल आदि चढ़ाना तथा सूर्य को अर्घ्य देना चाहिये। सभी प्रकार के नशे विशेषकर शराब का अवश्य ही त्याग कर देना चाहिये।

अन्नदान, जिसकी प्रेरणा महाराजजी को अपने तीसरे गुरु से प्राप्त हुई तथा जिसे शास्त्रों में भी सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है, को वे सबसे बड़ा दान एवं पुण्यकर्म मानते हैं। फलस्वरूप आश्रम में प्रतिदिन दोपहर से राततक सबके लिये नियमित भण्डारा बिना किसी भेदभाव के चलता रहता है। वे सभी लोगों को शिवलिंग की पूजा यथा संभव शुद्ध होकर जल आदि तथा पंचाक्षर मन्त्र से करने का आदेश देते हैं। शुद्धि के लिये वे स्नान पर भी बल देते हैं। शिवलिंग की पूजा में लोगों को प्रवृत्त करने के लिये ही वे जगह-जगह शिवालय का निर्माण करवाते तथा लोगों को लिंगपूजा के लिये सतत प्रेरित करते रहते हैं। स्वयं त्रिकाल स्नान एवं लिंगपूजा करते हैं ताकि लोग उनका अनुसरण कर सकें। आश्रम के परिसर में अन्य बातों के अलावा बिड़ी-सिगरेट या किसी प्रकार का नशा करना सख्त मना है। प्रत्येक दर्शनार्थी को यहाँ स्नान करके ही आना चाहिये, अन्यथा उनका प्रवेश नहीं होगा।